प्रथम बार

मूल्य, आठ आने

जीवन की झाँकियां (द्वितीय खण्ड)

मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ?

★

इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रकाशक—
विजय पुस्तक भण्डार
श्रद्धानन्द बाजार,
दिल्ली।

★

मुद्रक—
अर्जुन प्रिंटिंग प्रेस
श्रद्धानन्द बाजार
दिल्ली।

नामूलं लिख्यते किञ्चित्
नानपेक्षितमुच्यते ।

प्रस्तावना

यह मेरे संस्मरणों का दूसरा खण्ड है। इस सम्पूर्ण लेखमाला का वही मूलमन्त्र है, जो मैंने पहले खण्ड में उद्धृत किया था।

नामूलं लिख्यते किंचित् नानपेक्षितमुच्यते।

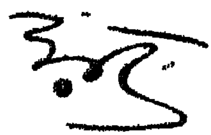
कोई बात अपनी जानकारी में असत्य नहीं लिखी गई, और न ही कोई अनावश्यक बात लिखी गई है।

शायद मैं इस लेखमाला को इतना शीघ्र दूसरे खण्ड के रूप में प्रकाशित न करता यदि इसकी ज़ोरदार मांग न होती। अभी इसका एक ही लेख प्रकाशित हुआ था कि पूरी लेखमाला की मांग होने लगी और अभी लेखमाला प्रकाशित न हुई थी कि उसकी पुस्तकाकार में मांग पैदा हो गई। कारण यह हुआ कि यह लेखमाला उस चीज़ से सम्बन्ध रखती है जिस की भारतवर्ष में बहुत कमी है। वह चीज़ है, सेहत। मैं जिस रोग की दलदल में फंस गया था, उसमें फंसने वालों की हमारे देश में कमी नहीं है। शायद ही कोई परिवार हो, जिस का एक न एक व्यक्ति न्यूनाधिक वैसी दलदल में फंसा हुआ न हो। मेरा उस दलदल से उद्धार हो गया—यह जान कर पाठकों के मन में यह जिज्ञासा स्वभावतः उत्पन्न हो गई कि यह बात कैसे हो गई?

इस छोटी सी पुस्तिका में इसी प्रश्न का उत्तर दिया गया है। इसे पढ़ते हुए पाठक यह ध्यान अवश्य रखें कि मैं चिकित्सक नहीं हूँ, प्रत्युत पुराना रोगी हूँ। पुराना रोगी हकीम नहीं होता, नीमहकीम होता है। नीम हकीम को हकीम मानना खतरनाक है, क्यों कि "नीम हकीम खतराए जान" नीम हकीम को हकीम मान लेने से प्राणों पर संकट आ जाता है। हां, पुराने रोगी को डाक्टर के घर का और परिचर्या की शैली का मार्गदर्शक ज़रूर माना जा सकता है। मैं इस पुस्तिका के

पाठकों से आग्रहपूर्वक प्रार्थना करूंगा कि वह इसे केवल मार्गदर्शक समझें, चिकित्सा की किताब नहीं; और मुझे एक ऐसा रोगी समझें जो ईश्वर की कृपा और अनुकूल चिकित्सा से स्वास्थ्य के रास्ते पर पड़ सका है, चिकित्सक नहीं।

यदि मेरे अनुभवों से किसी एक व्यक्ति को भी स्वास्थ्यलाभ करने में सहायता मिली तो मैं इस पुस्तिका को सार्थक, और अपने प्रयत्न को धन्य समझूंगा।



मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ?

(१)

शारीरिक दृष्टि से मैं बचपन का रोगी हूँ। दो वर्ष की आयु में मुझे निमोनिया हुआ था। फिर कुछ वर्ष पीछे डबल निमोनिया हुआ। १६ वर्ष की आयु में मुझ पर प्लूरसी का सख्त आक्रमण हुआ और ३५ वर्ष की आयु में प्रारम्भिक आक्रमणों से निर्बल हुए फेफड़ों को आंको निमोनिया ने और अधिक आहत कर दिया। इस प्रकार मैं शैशवकाल से ही खांसी और उससे सम्बद्ध रोगों का शिकार रहा हूँ। इनमें से सभी बीमारियों ने सर्वथा शान्त होने में औसतन एक एक साल लिये। रोग जाता रहा, पर उसके असर शब्द की प्रतिध्वनि की तरह चिरकाल तक

लम्बायमान होते रहे। मेरी स्मृति समयके रास्ते को तय करके जितना पीछे जा सकती है उतना जाकर जब वह अन्धकार में विलीन होने लगती है तब भी उसका धुंधला सा यह चित्र मेरे सामने आता है कि मुझे मेरी ताईजी (जिन्होंने २ वर्ष की आयु से माता के मर जाने पर मुझे पाला था) चम्मच से लाल शरबत पिला रही हैं। यह लाल शरबत बच्चों को खांसी के लिये पिलाया जाता था।

१९४२ से पूर्व मेरे शरीर को देखकर प्रायः यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि मैं बचपन का रोगी हूँ। मेरा शरीर भरा हुआ दिखाई देता था। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि मैंने दादाजी से और पिताजी से विशाल शारीरिक विभूति प्राप्त की थी और दूसरा यह कि मैं सदा रहन सहन में असाधारण परहेज से काम लेता रहा हूँ। यह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि पैंतीस साल हो गये या ४० साल, जब मैंने शौक के तौर पर बहुत ठण्डा पानी पिया था या कोई अचार जैसी खट्टी चीज खाई थी। थोड़े बहुत व्यायाम का भी मुझे सदा शौक रहा है। इन्हीं सब कारणों से मेरा शरीर चिर-रोगी होता हुआ भी समर्थ बना रहा।

लगभग १४ वर्ष हुए मैंने अपने शरीर की परीक्षा स्व० डा० अन्सारी से करवाई थी। डा० अन्सारी ने मेरे फेफड़ों की परीक्षा करके सम्मति दी थी कि बांयां फेफड़ा बिलकुल निकम्मा हो गया है। मेरा काम केवल दांये फेफड़े से चल रहा है। मेरे यह पूछने पर कि फिर मेरा काम कैसे चलेगा, डाक्टर साहब ने उत्तर दिया था कि जैसे एक हाथ कट जाने पर आदमी का काम चलता है वैसे। उतना बोझ उठाओ जितना एक ही फेफड़े से उठाया जा सके।

मैं काम चलाता रहा, परन्तु जो सावधानता डाक्टर साहब ने बतलायी थी उसका पूरी तरह ध्यान नहीं रख सका। खाने पीने और पहिनने में सावधानता रखता रहा, पर व्याख्यान देना बन्द न किया। व्याख्यान

वेदी से बोलने में फेफड़ों पर जो जोर पड़ता था उसे अनुभव करके भी मैंने उसकी उपेक्षा की।

इधर जेल की कृपा से मेरे पेट में गोले का दर्द भी बीच-बीच में उठने लगा था। १९४२ की देशव्यापी राज्य क्रांति के प्रारम्भिक दिनों में काम का जोर पड़ने और दिनचर्या में अव्यवस्था हो जाने के कारण मुझ पर दोनों व्याधियों का इकट्ठा आक्रमण हो गया। पाचनशक्ति बहुत खराब हो गयी और खांसी का प्रकोप बढ़ गया। फिर भी मैंने लिखने और बोलने का काम बन्द न किया जिसका परिणाम यह हुआ कि १९४४ के सितम्बर मास के अन्त में मैं दोनों व्याधियों के सन्निपात में फंस गया।

अपनी बीमारी का यह संक्षिप्त वृत्तान्त मैंने इस कारण दिया है कि इस लेख में चिकित्सा के चक्रव्यूह से निकलने की मेरी सफल चेष्टाओं का पूरा महत्व पाठकों की समझ में आ सके।

(२)

रोग और चिकित्सा के चक्रव्यूह में मैं लगभग दस महीने तक रहा। इनमें से पहले चार महीनों तक एलोपेथी का इलाज होता रहा उसके पश्चात् लगभग चार मास तक आयुर्वैदिक इलाज हुआ। अंतिम दो महीनों में होमियोपैथी का इलाज हुआ जिसकी सहायता से मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से निकलने में कामयाब हुआ।

इस लेख में मैं अपने चिकित्सकों के नाम नहीं लिखूंगा। इसका मुख्य कारण यह है कि मेरे सभी चिकित्सक सहृदय योग्य और सज्जन थे और हैं। मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। उनमें से किसी ने भी मेरा इलाज अपने पेशे का हिस्सा समझ कर नहीं किया अपितु कर्तव्य समझ कर किया। मेरी आवश्यकता पर, उन्होंने रात और दिन का

विचार न करके मेरे घर पर आने और यथेष्ट समय तक उपाय करने में कभी संकोच नहीं किया। मेरी परिचर्या का लगभग सारा बोझ स्वभावतः मेरी पत्नी पर ही पड़ा था। मेरे चिकित्सकों की ऐसी कृपा रही कि किसी भी समय आदमी या टेलीफोन द्वारा मेरी पत्नी से यह सूचना पाने पर कि मेरा स्वास्थ्य अधिक खराब है, वे पांच मिनट में उपस्थित हो जाते थे। ऐसे सज्जन, सहृदय और योग्य चिकित्सों के प्रति कृतज्ञता के भाव से मेरा हृदय भरा हुआ है। ऐसी दशा में किसी को यह भ्रम भी न होना चाहिए कि मैं जब किसी चिकित्साप्रणाली की आलोचना करता हूँ, तो वह चिकित्सक की भी आलोचना है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास है। चिकित्सक भी अपनी अभिमत चिकित्सा पद्धति से बाहर नहीं जा सकता। इस लेख में मैं चिकित्सा के सम्बन्ध में जो अनुकूल या प्रतिकूल अनुभव लिखूंगा, उन का सम्बन्ध पद्धतियों से ही होगा, चिकित्सकों से नहीं। यह मेरा सौभाग्य है कि चिकित्सकों के सम्बन्ध में मेरा नब्बे की सदी अनुभव बहुत ही मधुर है।

एलोपैथिक इलाज

(१)

मेरी बीमारी असाधारण ज्वर से शुरू हुई। मैं परिवार सहित उससे पहले दिन पहाड़ से आया था। मुझे जिसने देखा उसने कहा कि इस बार पहाड़ से आप असाधारण अच्छा स्वास्थ्य लेकर आये हैं। मैं भी इस बात से सन्तुष्ट था और सुधरे हुए स्वास्थ्य के आधार पर आगामी ६-१० महीनों का लेख और प्रचारयात्राओं का कार्यक्रम तैयार कर रहा था। सिंध, मद्रास और काठियावाड़ के पुराने निमन्त्रणों को पूर्ण करने के लिए दो तीन महीनों का लम्बा दौरा संकलित कर लिया था। अकस्मात् सायंकाल के भोजन के पश्चात् मुझे कुछ सर्दी मालूम हुई और मैं बाहर से उठ कर कमरे में चला गया। इससे भी सर्दी शान्त न हुई, तो बिस्तर बिछा कर, कम्बल ओढ़कर लेट गया। यह मेरे दीर्घ रोग का प्रारम्भ था। उस समय मुझे यह रोग सर्वथा अकारण प्रतीत हुआ। कुछ लोगों ने तो यह राय दी कि शायद स्वास्थ्य को नजर लग गई। यह

मनुष्य का स्वभाव है कि जब किसी घटना के प्रत्यक्ष कारण को पहचानने में असमर्थ हो जाता हैं, तब वह भाग्य, नजर या दैवी-प्रकोप आदि परोक्ष कारणों की कल्पना करता है। असाधारण अच्छे स्वास्थ्य की दशा में असाधारण लम्बी बीमारी का आना एक ऐसी घटना थी, कि उस के कारणों की तलाश होनी आवश्यक थी। यहां यह बात कह देने में मुझे संकोच नहीं कि उस रोग के तात्कालिक कारणों को पहिचानने में चिकित्सकों को सफलता नही हुई।

मेरा साधारण नियम है कि घर में किसी के रोगी होने पर उस का चिकित्सक द्वारा इलाज कराने में शीघ्रता नहीं करता। एक-दो दिन तक पथ्य आदि से ही उस का उपाय करने की चेष्टा करता हूँ। इस से प्रायः आधे रोग अनायास ही शान्त हो जाते हैं, परन्तु यह ईश्वरेच्छा थी या मतिभ्रम था, कि इस वार की बीमारी में मैंने उस नियम को तोड़ दिया। दूसरे ही दिन प्रातःकाल अपने पुराने पारिवारिक डाक्टर को बुला कर इलाज शुरू कर दिया। डाक्टर ने भली प्रकार परीक्षा करके निश्चय किया कि ज्वर का अन्य कोई कारण नहीं है, साधारण मलेरिया है। इसी आधार पर चिकित्सा आरम्भ हुई। एलोपैथी में मलेरिया की प्रामाणिक दवा एक ही है और वह है "कुनीन" दुर्भाग्यवश कुनीन मेरे शरीर के सर्वथा प्रतिकूल है। पांच ग्रेन कुनीन खा लेने का मुझ पर यह असर होता है कि नींद जाती रहती है, कब्ज़ हो जाता है और कान से सुनना बन्द हो जाता है। मेरे हितैषी डाक्टर ने सलाह दी कि कम से कम कुनीन की तीन गोलियां एक दिन में दी जायें, अन्यथा बुखार लम्बा हो जायेगा। मेरी अनिच्छा के कारण तीन को घटाकर दो कर दिया गया। मैं दिन में कुनीन की दो गोली और उसके साथ रोग के अन्य सब चिन्हों की अलग-अलग औषधियां जो संख्या में तीन या चार थीं, लेनें लगा। सिर दर्द, हाथ पांव का दर्द, तबीयत का मचलाना आदि सभी चिन्हों के लिए एक-एक दवा दी गई थी। यह एलोपैथिक इलाज की एक खासियत है कि उस में रोग और उस के सब चिन्हों का इलाज अलग

अलग परन्तु एक साथ ही आरम्भ किया जाता है जिससे रोगी का शरीर एक चलता-फिरता दवाखाना बन जाता है। मैं चारपाई पर लेटा हुआ था, इस कारण मेरा शरीर रोग के दूसरे दिन से ही लेटा हुआ दवाखाना बनने लगा। एक ही दिन में कुनीन के सब असर मुझ पर ऐसे छा गये, जैसे आकाश पर आंधी छा जाती है। नींद, भूख और चैन सब मानों बिदा हो गए और कानों ने जवाब दे दिया। तीन दिन तक वही इलाज जारी रहा। इसी बीच में कमर में सख्त दर्द होने लगा। तीन दिन और रातें लगभग नींद के बिना ही गुजरीं, चौथी रात के समय जब बेचैनी बहुत अधिक बढ़ गई, तब मेरी पत्नी ने रात के दस बजे डाक्टर साहब को बुला भेजा। उस समय जोर का झक्कड़ चल रहा था और वर्षा भी हो रही थी। डाक्टर साहब चाहते तो आने से इन्कार कर सकते थे, परन्तु उनकी सज्जनता ने उन्हें इन्कार करने से रोका और वह अत्यन्त अनुग्रह-पूर्वक आ गये। मेरी बेचैनी देखकर नींद लाने की एक दवा की दो खुराकें दीं और निर्देश किया कि पहले एक खुराक दी जाये, यदि उससे नींद न आये तो दूसरी दी जाये। मुझे एक खुराक दीं गई। उसका मुझ पर यह प्रभाव हुआ कि मुझे डिलीरियम हो गया। मुझे अनुभव होने लगा कि मैं किसी हवाई जहाज पर बैठा हूं। वह हवाई जहाज कभी ऊपर जाकर आकाश से टकराता है और कभी नीचे आकर पृथ्वी से। यह तो थी मेरे अन्दर की दशा। बाहर की प्रतिक्रिया का यह रूप था कि मैं बिस्तर पर से उठकर इधर-उधर जाने की चेष्टा कर रहा था। मुझे मेरी पत्नी ने दो-अन्य सहायकों की मदद से चारपाई पर से उठने से रोका। जब मेरी इस दशा की सूचना टेलीफोन द्वारा डाक्टर को दी गई, तो उन्होंने दूसरी खुराक भी दे देने की आज्ञा दी। दूसरी खुराक से उस समय तो कोई दो घंटों के लिये नींद आ गई, परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल बुखार बढ़ गया, और बेचैनी अधिक हो गई।

[२]

इसके पश्चात् डाक्टरी इलाज का दूसरा दौर आरम्भ हुआ। डाक्टर ने सम्मति बनाई कि जो बुखार तीन दिन की कुनीन से नहीं टूटा, वह मलेरिया नहीं हो सकता। वह तो वह इन्फ्लुएंजा होना चाहिये, क्योंकि खांसी का पुराना रोगी होने के कारण उसी रोग की संभावना अधिक थी। अब इन्फ्लुएंजा का इलाज शुरू हुआ। एलोपैथी के पास ऐसे रोगों के लिये भी एक रामबाण है, वह एम० बी० की गोलियां। काफी बड़ी मात्रा में वह गोलियां मुझे दी जाने लगीं, तीन दिन तक वह इलाज रहा। इस इलाज से मेरा ज्वर तो कुछ कम हो गया, परन्तु रोग के अन्य लक्षण बहुत खराब हो गये। भूख बिल्कुल जाती रही, सख्त कब्ज हो गया और हृदय की गति बहुत तेज हो गई, और निर्बलता का शरीर पर राज्य हो गया। मैंने परेशान होकर डाक्टर से निवेदन किया कि मुझे एम० बी० की गोलियां देना बन्द कर दीजिये इस इलाज से और जो बहुत से बुरे परिणाम प्रकट हुए, उनके अतिरिक्त एक बहुत बुरी बात यह हुई कि दूध मेरे लिये अत्यन्त प्रतिकूल हो गया। बीमारी में यदि दूध भी न लिया जा सके तो बीमार के लिये निराहार रहने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रहता। इधर कब्ज को दूर करने के लिये मुझे विरेचक गोलियां दी जा रही थी और उधर निराहार रहने की नौबत आ गई। फलतः मेरी दशा बहुत ही संकटपूर्ण हो गई। एक बार तो अत्यन्त निर्बलता के कारण परिवार के लिये बहुत चिंता का अवसर आ गया था।

मेरी ऐसी दशा देखकर डा० साहब ने इन्फ्लूएंजा का वह इलाज बन्द कर जिया, और मेरी पाचन शक्ति को ठीक करने तथा निर्बलता को दूर करने का उपाय आरम्भ किया। इस प्रकार मेरे इलाज का तीसरा दौर आरम्भ हुआ।

(२)

६-७ दिन के जोरदार डाक्टरी इलाज के अनन्तर मैंने अपने को निम्नलिखित दशा में पाया—ज्वर कुछ कम हो गया था, परन्तु सर्वथा दूर नहीं हुआ था। रात भर कमर में सख्त दर्द रहता था। यूं, पेट और कमर का हिस्सा सर्वथा बेजान सा हो गया था। सुई चुभोने तक से दर्द नहीं होता था। पेट ने काम करना बिल्कुल छोड़ दिया था। दूध तो एक ओर रहा, चाय और पानी भी नहीं पचते थे। निर्बलता बहुत बढ़ गई थी। ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था कि मैं डाक्टर से चालू इलाज को बन्द करने की बात कहता। मैंने वैसा ही किया। एक हल्का-सा अल्टीमेटम डाक्टर साहब को दे दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि या तो इलाज बन्द कर दीजिये अथवा बदल दीजिये।

डाक्टर ने मुझ से सहमत होकर मलेरिया का इलाज करना छोड़ दिया और मेरे उस समय के कष्टों का उपाय करने लगे। एलोपैथी के व्यावहारिक असूल के अनुसार मेरी सभी शिकायतों का अलग अलग इलाज शुरू हुआ। अनुभवी लोग इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि एलोपैथी रोग के प्रत्येक चिन्ह पर जुदा जुदा शस्त्र का प्रयोग करती है। आप डाक्टर की दुकान पर जाकर अपनी बीमारी का वृत्तान्त सुनाना शुरू कीजिये, तो आप देखेंगे कि डाक्टर साहब हरेक वाक्य के अन्त में एक नुस्खा नोट कर लेंगे। आपने कहा, 'मुझे बुखार आता है।' डाक्टर ने कुनीन देने का निश्चय कर लिया फिर आपने कहा, 'मुझे कब्ज भी है' एक पुड़िया या गोली के रूप में विरेचक दवा नुस्खे में जोड़ दी गई। फिर आपने बतलाया कि सिर दर्द भी है, तो एस्प्रीन की नवीनतम नामवाली गोली भी दवा में शामिल कर दी गई। यदि आंखों में जलन की शिकायत हो तो सम्भवतः आई ड्रोप की एक छोटी-सी शीशी और एक ड्रापर भी आपको दे दिये जायेंगे। मेरे डाक्टर मित्र मुझे क्षमा करें कि मैंने उनके दुकानी

इलाज का ऐसा चित्र खींचा हैं, परंतु है यह वास्तविक चित्र। सम्भव है, एलोपैथी के वर्तमान सिद्धान्त के साथ-साथ रोगियों की अधिकता भी इसका कारण हो, परन्तु डाक्टर की दूकान पर बैठकर देखने वाले पर यही असर होता है कि डाक्टर रोग के हरेक चिन्ह का अलग अलग इलाज करने में ही इलाज की इतिश्री समझता है। उत्तम से उत्तम और सहृदय डाक्टर भी कुछ वर्षों तक दुकानी डाक्टर रहने के पश्चात केवल कम्पाउंडर का मुहर्रिर रह जाता है। कम्पाउण्डर जो दवा देगा, डाक्टर उसके नुस्खे लिखने का काम करने लगता है।

मेरे डाक्टर अत्यंत योग्य और सहृदय थे। मैंने ऐसे सहृदय डाक्टर बहुत कम देखे है। परन्तु इलाज करने में वह भी एलोपैथी की प्रथा से बंधे हुए थे। वे मेरी प्रत्येक शिकायत का उपाय अलग अलग करने लगे। अजीर्णता को दूर करने के लिए पेटेण्ट गोलियाँ, कमर के दर्द को रोकने के लिए पुड़िया, पेट को साफ करने के लिए प्रति दिन विरेचक दवा और निर्बलता को हटाने के लिए इंजेक्शन — मेरे रोगी और निर्बल शरीर पर यह सब रामबाण इकट्ठे चलने लगे।

इस सारे चिकित्सा-चक्र का जो परिणाम हो रहा था, वह इससे प्रकट होगा कि उन दिनों मेरी जुबान पर प्रायः यही लोकोक्ति रहती थी, 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की!' इतने नुस्खों के रेल-पेल में बेचारा शरीर बहुत ही परेशान हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर के अंदर अनेक व्याधियां और अनेक ओषधियों का अखाड़ा बना हुआ है, जिसमें रात दिन दंगल जारी रहता है। समय के साथ-साथ नुस्खों और डाक्टरों की संख्या भी बढ़ने लगी। केवल एक पेट की खराबी को दूर करने के लिए शायद एक दर्जन से अधिक नुस्खे और पेटेण्ट बोतलें बदल बदल कर प्रयोग में लाई गईं। मै तो अपने संतोषी स्वभाव के कारण जिन दिनों जिस डाक्टर का इलाज करता हूं, उन दिनों उसी को छोटा भगवान् मान लेता

हूं परंतु मेरी बीमारी की ढिठाई या इलाज की अपूर्णता के कारण मेरे उन दिनों के छोटे भगवान का ही आत्मविश्वास डिग गया था। डाक्टर ने सलाह दी कि सिविल सर्जन की भी राय ले ली जाय। सिविल सरजन साहब बुलाये गये। उनकी सम्मति से मेरे इलाज में कई तरह की नई गोलियां और पहले से चलते हुए इंजैक्शनों के साथ एक नई दवा के इंजैक्शन की वृद्धि हो गई।

बुखार फिर भी प्रति दिन चढ़ता-उतरता रहा और अजीर्णता में भी न्यूनता नहीं आई, तो डाक्टर की अनुमति से मेरी पत्नी नें कलकत्ते के एक बहुत बड़े डाक्टर को बुलाने की योजना की। वह मानों भारत में एलोपैथिक इलाज के अणुबम हैं। वह भी आये और लगभग सात नुस्खे नोट कराकर चले गये। उनकी लिखाई हुई कई दवायें दिल्ली के बाजार में प्राप्त नहीं हो सकीं, इस कारण कलकत्तें से मंगवाई गईं। उनकी सलाह से फेफड़ों के तीन प्रकार के एक्सरे चित्र लिवाये गये और सभी प्रकार की प्रचलित परिक्षायें यथा रक्तपरीक्षा, थूकपरीक्षा आदि करवाई गईं। यह क्रम लगभग तीन मास तक जारी रहा। चौथे मास के आरम्भ में, मेरी शारीरिक दशा यह थी कि ज्वर विद्यमान था, बोझ निरन्तर घट रहा था और भोजन की मात्रा एक दो वर्ष के बच्चे से भी कम थी। डाक्टर कहते थे कि रोगी के फेफड़े खुराक मांगते हैं और पेट खुराक को अंगीकार नहीं करता। इस विषम समस्या का कोई उपाय नहीं सूझता।

अब तो मेरे परिवार और मित्रों पर चिन्ता सवार हो गयी। बीमारी का समाचार सुन कर अनेक हितैषी आने लगे और संसार की प्रच लित पद्धति के अनुसार प्रायः सभी कुछ न कुछ पथ्य या इलाज बतला जाते थे। डूबते को तिनके का सहारा। मेरे घर के लोग प्रत्येक हितैषी की सलाह को बड़ी उत्सुकता से नोट कर लेते थे। कभी कभी उन्हें प्रयोग में भी लाया जाता था। ऐसा एक दृष्टांत पाठकों

को सुनाता हूँ। मैंने ऊपर लिखा है कि इस बीमारी के आरम्भ से ही दूध मेरे प्रतिकूल हो गया था। डाक्टर कहता था कि जो लोग शोरवा या अण्डे नहीं ले सकते, उनके लिए दूध से बढ़ कर कोई भोजन नहीं। वह मेरी निर्बलता का सबसे मुख्य कारण यही बतलाते थे कि मै दूध नहीं पचा सकता। फलतः घर के लोगों ने ऐसीं दवा की तलाश में कोई कसर न उठा रखी, जिसकी सहायता से दूध को पचाया जा सके। डाक्टर ने जो पेटेन्ट गोलियां बतलाई थीं, जब वह सफल न हुईं तो एक वैद्य महोदय की सलाह से दूध में मुनक्का उबाली गईं। फिर भी दूध सुपच न हुआ तो एक डाक्टर मित्र की राय से दूध को सोडा बाई-कारब डाल कर सुपच बनाने की चेष्टा की गई। वह यत्न भी निष्फल हुआ, तो कलकत्ते से मंगाई गई विशेष गोलियों का प्रयोग किया गया। इतने यत्न किये गये, परन्तु दुग्ध-देवता मुझ पर प्रसन्न न हुए।

अब मैं एलोपैथिक इलाज से पूरी तरह थका चुका था। इन्हीं दिनों मेरे एक बहुत हीं निकट के डाक्टर ने राय दी कि जो इलाज हो रहा है, वह बिल्कुल गलत है। असल में तो बुखार गुरदे की खराबी के कारण है। इसपर पेशाब की परीक्षा कराई गई, जिससे मालूम हुआ कि उसमें कोई दोष नहीं। एक अन्य डाक्टर ने सन्देह प्रकट किया कि शायद आंतो में कोई दोष है। इस संदेह के निवारण के लिए मल-परीक्षा कराई गई, जिससे वह संदेह भी जाता रहा। एक रोगी को विचलित करने के लिए यही सब वहम काफी थे कि एक परम स्नेही डाक्टर अपने एक मित्र डाक्टर को साथ लेकर मुझे मिलने आये और लगभग दो घंटों की परीक्षा के पश्चात् यह सम्मति दे गये कि मैं क्षयरोग का रोगी हूं। मुझे कम से कम छः मास तक चारपाई पर से न हिलना चाहिये।

(४)

टी० बी० (क्षय रोग) के भूत से मेरी लड़ाई बहुत पुरानी है। सोलह साल की आयु में जब प्लूरसी हुई थी, तब भी कई डाक्टरों ने यह संदेह प्रकट किया था कि संभवतः मुझे टी० बी० है। लम्बे चलने वाले बुखार के बारे में मानों डाक्टरों का यह तकिया-कलाम है कि "इस बीमार को तो टी० बी० है।" मैंने तो प्रायः यह वाक्य रोग को पहचान सकने की असमर्थता का नामान्तर ही पाया है। उस समय डाक्टर के कहने पर लाहौर में मेरे शरीर की परीक्षा की गई थी तो मालूम हुआ था कि मुझे टी० बी० नहीं है।

फिर १९२८ में जब मैं फिरोजपुर जेल में रोगी हुआ, तब भी डाक्टरों ने सम्मति दी थी कि टी० बी० है। उस समय डाक्टर अन्सारी ने जेल में मुझे देख कर भ्रम-निवारण कर दिया था।

१९३६ में फिर यह भूत मेरे सामने खड़ा किया गया। पेट में गोले के दर्द का दौरा हो चुकने के पश्चात् कुछ दिनों तक ज्वर आता रहा। उसपर काबू न पा सकने पर डाक्टरों ने फिर घोषणा की कि टी० बी० है। मैंने एक बार भी यह स्वीकार नहीं किया कि मुझे टी० बी० है। मेरी अन्तरात्मा इस घोषणा से सदा लड़ती रही है। अन्त में डाक्टर यही कह कर मुझे छोड़ देते थे कि अच्छा, आप ऐसा ही समझते रहिये, इसमें कोई हर्ज नहीं। मेरा ऐसा समझने से कुछ हर्ज हुआ भी नहीं। मैं क्षय के भूत से अब तक बचा रहा हूँ और आगे भी बचा रहूँगा। मेरा विचार है कि यदि ज्वर के रोगी मेरा अनुकरण करके क्षय के भूत को अपनी आत्मा पर हावी होने से रोकते रहें तो वह अन्त में उस पर हावी होजायें। संसार में हारने में ही हार है, और जीतने में ही जीत। जो व्यक्ति जीतने पर तुला हुआ हो उसे कोई नहीं हरा सकता। १९४४ में भी जब मेरे एक प्रिय डाक्टर ने बहुत चिन्तापूर्ण चेहरे

से यह घोषणा करदी कि आपको टी० बी० है, तब मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया कि आपका भ्रम है। मुझे टी० बी० नहीं है। साथ ही यह निश्चय कर लिया कि अब एलोपैथीक इलाज नहीं करूंगा, क्योंकि एलोपैथीने टी० बी०की थ्योरी बीच में लाकर मेरा इलाज करने में अपनी असमर्थता प्रगट कर दी है।

आयुर्वैदिक चिकित्सा

(१)

मैंने प्रस्ताव किया कि अब आयुर्वेदिक चिकित्सा की जाय। मेरी पत्नी भी इस प्रस्ताव से सहमत हो गईं। फलतः दिल्ली के एक प्रमुख वैद्यराज से प्रार्थना की गई, जिसे उन्होंने प्रार्थना की तरह नहीं, अपितु संदेश की तरह स्वीकार किया। वह आये और आकर शिकायत की कि कि अबतक आपने मेरे पास संदेश क्यों नहीं भेजा? वैद्यराज ने भी लगभग तीन मास तक मेरा इलाज किया। जिस प्रेम और अपनावट से उन्होंने मेरी चिकित्सा की, उसे कोई भी रोगी जन्म भर नहीं भुला सकता। दिन में जिस समय भी वैद्यजी को टेलीफोन द्वारा सूचना दी जाती, उसी समय नई दिल्ली से अपनी कार द्वारा वह आने का कष्ट उठाते थे। वैद्य जी ने पहले मेरी अजीर्णता का इलाज आरम्भ कर दिया

उस इलाज में उन्हें प्रारम्भिक सफलता भी हुई। मैं कुछ भोजन करने लगा, परन्तु आयुर्वेदिक इलाज से एक नई उलझन पैदा हो गई। मेरा भोजन बहुत हल्का कर दिया गया था। दूध तो पहले ही प्रतिकूल हो गया था। अब घी, गेहूँ, दाल आदि की मात्रा भी लगभग शून्य हो गई। मेरा निर्वाह चावल, दही, फल तथा सब्जी पर होने लगा। फेफड़ों का पुराना रोगी होने के कारण मुझे जैसी खुराक की आवश्यकता थी, वह सर्वथा बन्द हो गई। परिणाम यह हुआ कि मेरा बोझ निरन्तर घटने लगा। शारीरिक शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी और अधिक चिंता की यह बात थी कि ज्वर में कोई कमी नहीं आई। ज्वर प्रति दिन हो ही जाता था। उन दिनों मेरा वजन महीने में ६-७ पौंड की औसत से घट रहा था। १९४५ के अप्रैल मास में घटते घटते मेरा बोझ ९९ पौंड रह गया था। शारीरिक निर्बलता के साथ ही साथ मेरी पुरानी खांसी जोर पकड़ती जाती थी। उन दिनों मेरे परिवार के लोग और मित्र बहुत चिन्तित रहते थे। दशा यह हो गई थी कि दिन बुखार में बीतता था और रात पसीने में। नींद दुर्लभ वस्तु हो गई थी। वैद्यजी रोग पर काबू पाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। इसका सब से बड़ा यह सबूत है कि उन दिनों में सुबह से शाम तक शहद या गिलोय के रस के साथ कम से कम ९-१० बार कोई न कोई औषध लेता था। मेरी परिचर्या करने वालों का सारा दिन औषध तैयार करने और खिलाने में ही व्यतीत होता था।

(२)

मशहूर है कि भारतवर्ष में रोगी का हाल चाल पूछने के समय प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर उतनी देर के लिये धन्वन्तरि की आत्मा प्रवेश कर लेती है। इस सचाई का अनुभव मुझे लम्बी बीमारी में हुआ। जो वैद्य या मिलने वाले सज्जन कोई औषध या पथ्य बतलाते थे, मैं उसे बहुत सावधानता से कागज पर या मन पर अंकित कर लेता था,

अन्त में उनसे कहता था कि मैं अपने चिकित्सक के सामने आपका नुस्खा रख दूंगा फिर जैसी उनकी सलाह होगी, वैसा करूंगा। इस प्रसंग में एक वैद्यजी का किस्सा बहुत मजेदार है। उन दिनों मेरी तबीयत बहुत खराब थी। डाक्टर और वैद्य दोनों ने मेरा मिलना-जुलना, और बात-चीत करना लगभग बन्द कर रखा था। चपरासी एक पर्चा लाया, जिस पर उन वैद्यजी का नाम लिखा हुआ था। मेरी परिचय करने वालों ने कहला दिया कि डाक्टर ने बन्द कर दिया है इस कारण मिलना नहीं हो सकेगा। इसके उत्तर में वैद्यजी ने लिखा कि मैं इलाज के बारे में ही कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, मुझे बुला लिया जाय। मेरे मनमें वैद्य जी का अध्ययन करने का कौतूहल पैदा हुआ, मैंने अनुरोध किया कि वैद्य जी को बुला लिया जाये। वैद्यजी आ गये। आपने कहा कि मैंने पत्रों में आपकी बीमारी का समाचार पढ़ा है। मैं वैद्य होने के साथ साथ एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी हूँ। आप भी राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। इस कारण मैं आप का इलाज करने के संकल्प से आया हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं कविराज जी का इलाज कर रहा हूं। मैं एक इलाज में दूसरा इलाज करना पसन्द नहीं करता। आप अपनी सम्मति दे दीजिये, मैं वैद्यराज के सामने रख दूंगा। वह यदि उचित समझेंगे, तो उससे लाभ उठा लेंगे।

इस पर वैद्यजी ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त सा भाषण देते हुए बतलाया कि जो इलाज हो रहा है उससे आप का रोग दूर नहीं हो सकता। नुस्खा बतलाने के बारे में आपनें सम्मति दी कि एक वैद्य का नुस्खा दूसरे वैद्य को पसन्द नहीं आ सकता। अन्त में कहा कि यदि आप को मेरी बात का विश्वास न हो तो आप वर्तमान इलाज को जारी रख कर देख लीजिये। उससे कोई लाभ न होगा, मैं आज से १५ वें दिन फिर आऊंगा। यदि आप उस समय चाहेंगे तो मैं इलाज अपने हाथ में ले लूंगा।

यह सूचना देकर वैद्यजी चले गये और ठीक पन्द्रवें दिन फिर पधारे । मैं अभी बीमारी के उसी दौर में था । मेरे पास आकर आपने बड़ी गम्भीरता से सिर हिलाया और कहा, "देख लीजिये, मैंने जो कहा था, वही हुआ । जो दवा मेरे पास है, वह किसी वैद्य के पास नहीं है । कविराज ...... तो जानते ही क्या है ? क्या अब आप मेरा इलाज करेंगे ?,

मैंने मुस्करा कर वही पुराना उत्तर दिया । इस पर कुछ असन्तुष्ट होकर वैद्य जी ने कहा कि 'आप इतने विद्वान् हो कर भी खरे और खोटे में भेद नहीं कर सकते । मुझे इसी बात का दुःख है । खैर आप और कुछ दिन देख लीजिये मैं पन्द्रह दिन बाद फिर आऊंगा ।

दो बार की मुलाकात में मैंने वैद्य जी का पूरा अध्ययन कर लिया था । मेरे परिवारवालों पर उनकी निराशाजनक बातों का बहुत बुरा असर होता था । इस कारण निश्चय किया गया कि तीसरी बार यदि वैद्य जी आयें तो उनसे निचली मंजिल पर ही हाथ जोड़ कर क्षमा मांगली जाय । वैद्य जी तीसरी बार भी आये और जब उनसे हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी गई तो उन्होंने उत्तर दिया, 'खैर पंडित जी नहीं मिलना चाहते तो न मिलें, पर मैं जो दवा लाया हूँ, वह अपने पास रख लें और जब वर्तमान इलाजों से निराश हो जायें— जैसा कि होना आवश्यक है, तब मेरी दवा लेकर देखें । दवा का मूल्य पूछने दर उन्होंने उत्तर दिया कि वह तब बताया जायगा, जब दवा अपना काम कर चुकेगी ।"

वैद्य जी चौथी बार भी आये परन्तु तब तक मैं कुछ स्वस्थ होकर जलवायु परिवर्तन के लिये हरिद्वार जा चुका था । पंडित जी की दवा तो काम न आई, परन्तु रामबाण तैयार करने वाले वैद्य का एक नमूना अवश्य हाथ आ गया ।

इसी प्रसंग में एक स्वामीजी का वृत्तान्त भी सुना देता हूँ। उन्होंने भी वैद्यजी की तरह अपने पत्र में यही लिखा था कि वह एक परमौषधि बतलायंगे, जिस से असाध्य से असाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं। वे रोगी-गृह में बुलाय गये। आकर उन्होंने पहले कुछ वेदमन्त्रों का पाठ किया, फिर यज्ञ के सम्बन्ध में एक व्याख्यान दिया और अन्त में बतलाया कि अमुक विधि से यज्ञ किया जाये तो रोग दूर हो सकता है।

एक प्राकृतिक चिकित्सक उन दिनों पधारे जब मेरी दशा बहुत निर्बल हो गई थी। उन्होंने लगभग १॥ घण्टे तक मेरा सब वृत्तान्त नोट किया और अन्त में सम्मति दी कि आपको उपवासचिकित्सा करनी होगी। मैं उसी सप्ताह तुला था तो तराजू ने मेरा बोझ ६६ पौंड बतलाया था। इस बोझ के साथ उपवासचिकित्सा की जा सकती है, यह बात हम लोगों की छोटी बुद्धि में नहीं आई। हां, उनकी सलाह भी नोट कर ली गई।

यह तो मैं ने तीन दृष्टान्त दिये। उन आठ महीनों में मुझे शायद एक सौ से अधिक नये नये नुस्से बतलाये गये। शायद ही कोई मित्र या बन्धु ऐसा मिला हो जिसने एक या एक से अधिक नुस्खा न बतलाया हो। मुझे यह विश्वास है कि उन सभी का मनोभाव मेरे प्रति अत्यन्त आत्मीयता का था। इस कारण मैं उन सभी का आभारी हूँ।

इलाज की कहानी आपने सुनी, अब कुछ पथ्य की कहानी भी सुनिये। जो सज्जन मिलने आते थे, कुछ सलाह पथ्य के बारे में भी दे ही जाते थे। वह सलाह प्रायः परस्पर विरुद्ध होती थी। मजेदार बात यह थी कि डाक्टरों और वैद्यों में भी प्रान्तभेद से पथ्य का भेद पाया जाता था। बँगाली चिकित्सक चावल के भोजन को उत्तम बताते थे और पञ्जाबी चिकित्सक गेहूँ के भोजन को। बँगाली डाक्टर मुझे प्रतिदिन रसगुल्ला खाने की प्रेरणा करते थे, और पंजाबी डाक्टर मक्खन खाने की। दाल के संबन्ध में बड़ी पेचीदा परिस्थिति उत्पन्न हो गई।

कविराजजी ने पहले दाल बिल्कुल बन्द कर दी थी। कुछ समय पश्चात् मूँग की दाल लेने की अनुमति दी। इस पर यह परामर्श होने लगा कि दाल छिलके वाली दी जाये या बगैर छिलकों के। उन दिनों जितने वैद्य या चिकित्सक मेरे पास आये उन सभी से इस प्रश्न पर राय ली गई। जिनसे नहीं मांगी गई उन्होंने स्वयं दी। प्रायः सभी सम्मतियां एक दूसरे को काटती थीं। एक कहता था कि मूँग की दाल हल्की है, दूसरा कहता था, भारी है। एक की सम्मति थी कि छिल्का आंतों के लिये बहुत खराब है, और दूसरे की राय थी कि छिलके में ही जीवन है। यह तो अच्छा था कि मैं सुनता सब की था, परन्तु करता केवल चिकित्सक की था, अन्यथा मैंने अनुभव किया कि यदि रोगी सब की सलाह सुनने लगे तो वह रोग और इलाज की दलदल में से कभी नहीं निकल सकता।

(४)

आयुर्वेदिक इलाज के दिनों में भी, दूध आदि पुष्टिकारक भोजन के सम्बन्ध में चिकित्सकों और अन्य सलाहकारों में परस्पर बहुत मतभेद बना रहा। कुछ की सम्मति थी कि मुझे चिकना पुष्टिकारक भोजन सर्वथा त्याग देना चाहिये। दो-चार बार यह परीक्षण किया भी गया परन्तु परिणाम देखकर छोड़ देना पड़ा। पोषक भोजन छोड़ देने से शरीर की गरमी बढ़ जाती थी और शरीर बहुत निर्बल प्रतीत होने लगता था। दूसरी ओर कुछ सज्जन निरन्तर यह सलाह देते रहे कि पोषक भोजन पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये और उसके पचाने का उपाय करना चाहिये। इस सम्मति का भी अधूरा प्रयोग कई बार किया गया, परन्तु कोई समर्थ उपाय न मिलने से छोड़ देना पड़ा। इस तरह भोजन की व्यवस्था अव्यवस्था के रूप में ही चलती रही। मेरे लिये वह मनोविज्ञान का एक पाठ था। मनुष्य अपने आप को सर्वज्ञ मानता है, यदि उसकी इस भावना में कुछ कमी भी हो तो शिक्षा उसे पूरा कर

देती है। एक डाक्टर सर्वसाधारण को अनाड़ी और अपने को विज्ञ मानता है। यही दशा प्रत्येक विषय के विद्वान् की है। व्यवहार की कसौटी पर रखी जाकर विशेषज्ञों की सर्वज्ञता की कठोर परीक्षा हो जाती है। कोई दो डाक्टर एक रोग के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से शायद ही कहीं सहमत होते हों। आमतौर पर तो यह देखा जाता है कि कठिन रोगों के सम्बन्ध में योग्य और अनुभवी चिकित्सक एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध सम्मति रखते हैं। मैंने बीमारी के दिनों में अनुभव किया कि कोई दो चिकित्सक रोगी के पथ्य के सम्बन्ध में बिल्कुल एक सा नहीं सोचते। आम लोग भी ऐसे मामलों में 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की सचाई को सिद्ध करते प्रतीत होते हैं। कलकत्ते के बहुत बड़े डाक्टर ने मेरे लिये भीगे हुए चनों और क्रीम का पथ्य बतलाया था। यूं इन दिनों मुझे गेहूं या चावल भी दुष्पच्य प्रतीत होते थे। एक वैद्य ने सलाह दी कि रोगी के कमरे में प्रतिदिन धूप जलायी जाये। उससे खांसी बढ़ने लगी तो दूसरे वैद्य ने सम्मति दी कि किसी भी प्रकार का धुआं अत्यन्त हानिकारक होगा।

यह था रोग और उसकी चिकित्सा का चक्रव्यूह, जिस में मैं लगभग ८ मास तक फंसा रहा। जितने इलाज किये गये, सब निष्फल हुए। थोड़ा बहुत लाभ कविराज जी के इलाज से प्रतीत होने लगा था, परन्तु कुछ सप्ताह पीछे वह भी शून्य रूप में परिवर्तित हो गया। बुखार जारी रहा और बोझ घटता गया।

अन्त में इलाज से मेरा धैर्य टूट गया। मैं अनुभव कर रहा था कि चिकित्सक लोग मेरे रोग के चिन्हों या टुकड़ों पर औषध का आक्रमण कर रहे हैं, असली रोग तक वे लोग नहीं पहुंचे। इसी बीच में मैंने हरिद्वार और लाहौर के दो प्रमुख वैद्यों से भी चिकित्सा करवा डाली। वह चिकित्सा चौबीस घण्टों तक भी न चल सकी। उस का शरीर पर तत्काल बहुत बुरा असर हुआ। इस प्रकार मुझे

अनुभव होने लगा कि बाह्य चिकित्सा बिल्कुल व्यर्थ है। इस लंबी बीमरी में मेरी सब से अधिक प्रभावसंपन्न सहायक औषधि मेरी इच्छा शक्ति थी। मुझे दृढ़ निश्चय था कि मेरा जीवन अभी शेष है। बहुत से सज्जन अविश्वास भरे आश्चर्य से मेरी ओर देखा करते थे, जब जब मैं बलपूर्वक कहता था कि मैं शीघ्र ही निरोग हो जाऊंगा, क्योंकि अभी मेरा कम से कम पच्चीस वर्ष का जोरदार सार्वजनिक जीवन शेष है। अस्थिपंजर से ऐसी बातें सुनना आश्चर्यजनक था भी, परन्तु यह मैं पूरे सत्य के साथ कह सकता हूँ कि मैंने कभी बनावट के तौर पर ऐसा आशावाद प्रगट नहीं किया था। वह मेरे अन्दर की आवाज थी। जब डाक्टरों ने मेरे कान में क्षय रोग की अमङ्गल ध्वनि पहुंचाई, तब भी मेरी अन्तरात्मा ने यही उत्तर दिया कि "यह असम्भव है। अभी नहीं।"

सो मैं जीवन के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से आशायुक्त होता हुआ भी इलाज के सम्बन्ध में सर्वथा निराश हो रहा था। जाब्ते से और बेजाब्ता बहुत से डाक्टरों की सम्मतियां इकट्ठी की गईं। उनमें से किसी से भी मेरी तसल्ली नहीं हुई।

मैं इसी विचारसंकट में था कि किसी ने होमियोपैथी के इलाज की चर्चा चला दी, 'डूबते को तिनके का सहारा' मेरी पत्नी ने कहा कि यह इलाज भी कर देखना चाहिए। मैंने इस शर्त पर यह सुझाव मान लिया कि केवल सात दिन तक नये इलाज की परीक्षा की जायेगी। कोई लाभ हो गया तो ठीक, अन्यथा सब इलाज छोड़कर, दिल्ली से बाहर किसी शान्त स्थान में जाकर केवल पथ्य द्वारा चिकित्सा करूंगा। अब अपने शरीर को दवाइयों का स्टोर बनाना मुझे अच्छा नहीं प्रतीत होता था।

दलदल से बाहिर

(१)

अब मैं चिकित्सा के अन्तिम और सफल दौर पर आता हूँ। मैंने एक होमियोपैथ डाक्टर के पास संदेश भिजवाया तो वह उसी दिन आ गये। मेरा वृत्तांत सुन कर उन्होंने विश्वास दिलाया कि होमियोपैथी से मेरे रोग का इलाज हो सकता है। निश्चय करने में दो एक रोज और लगे। जब मैं निश्चय पर पहुंच गया, तब मेरे एक मित्र एक अपने अत्यन्त पुराने परिचित होम्योपैथिक डाक्टर को मेरे पास बुला लाये। उन्होंने मेरा वृत्तांत सुन कर पूर्ण विश्वास दिलाया कि रोग बहुत शीघ्र दूर हो जायेगा। मैंने अधीरता से कहा:—

'डाक्टरजी, मैं सात दिन तक होमियोपैथी के इलाज की परीक्षा'

करूंगा। इससे अधिक नहीं।'

डाक्टर ने हंस कर उत्तर दिया, 'पंडितजी, सात दिन तो बहुत हैं, मैं केवल चार दिन की मोहलत चाहता हूँ। इतने समय में आप को लाभ न हो तो आप की जैसी इच्छा हो कीजियेगा।'

मैंने स्वीकार कर लिया।

(२)

अगले दिन रात के समय, सोने से पहले खाने के लिये, होमियोपैथिक डाक्टर ने स्टैण्डर्ड आकार प्रकार की दो छोटी-छोटी होमियोपैथिक गोलियां भेज दीं। उन गोलियां को लेते समय मेरी मनोवृत्ति उपेक्षा की थी। आठ मास के असफल इलाज के कारण दवा पर से मेरी श्रद्धा उठ चुकी थी। मुझे डाक्टर ने यदि यह विश्वास न दिलाया होता कि उन गोलियों का उद्देश्य रोग का विरोध करना नहीं, बल्कि शरीर को रोग से लड़ने के योग्य शक्ति देना है तो मैं उन गोलियां को अंगीकार भी न करता। फिर भी मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैंने वह गोलियां बहुत आशा से नहीं ली थीं, प्रत्युत यह समझ कर ली थीं कि खैर, यह परीक्षण भी कर लेते हैं, जो परिणाम होगा, देखा जायगा।

दवा देते समय डाक्टर ने कह दिया था कि होमियोपैथी में एक समय में एक ही इलाज होता है, अनेक रोगों या रोग के चिन्हों का अलग-अलग इलाज नहीं। वह दवा मुझे रात के कष्टों—उन्निद्रता, पसीना आदि—के निवारण की दृष्टि से दी गई थी। दवा लेने के कोई दस मिनट पीछे मेरी आंख लग गई। मैं लगभग दो घण्टों तक आराम से सोया। मेरा इतनी देर तक आराम से सोना ऐसा अद्भुत प्रतीत हो रहा था कि मेरी पत्नी को यह निश्चय करने के लिए कि मैं वस्तुतः सो गया हूँ या बेहोश हूँ, दो घण्टों में कई बार तरह-तरह की परीक्षा करनी पड़ी। परीक्षा से यही मालूम हुआ कि मैं सो रहा हूँ। उस समय

रात के लगभग बारह बजे होंगे, जब मेरी नींद खुली। मुझे उस समय बहुत ही आश्चर्यपूर्ण आनंद हुआ, जब मैंने अनुभव किया कि मैं दो घन्टा तक सो चुका हूं और मुझे, पसीना भी नहीं आया। मैंने उस समय जो पहले शब्द अपनी पत्नी से कहे, वह मुझे भली प्रकार स्मरण हैं। मैंने कहा था कि "अब मैं राजी हो जाऊंगा, मेरी बीमारी पीछे हटने लगी है।" उस समय मुझे अपने वे शब्द भी याद आये जो मैंने आठ मास पहले बीमारी के आरम्भ में कहे थे। रात के समय ज्वर चढ़ा, दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने अपनी पत्नी से कहा था, 'मेरा यह ज्वर साधारण नहीं है, मुझे शरीर के हरेक भाग में ज्वर का अनुभव हो रहा है।" उस दिन दो घंटे की नींद के बाद मैंने इससे बिलकुल उल्टी प्रक्रिया का अनुभव किया। मुझे प्रतीत हो रहा था कि मेरे शरीर के प्रत्येक अंग में से रोग के अणु पीछे हट रहे हैं। कुछ देर पश्चात् मुझे फिर नींद आ गई। प्रातःकाल जब मैं सोकर उठा तो अपने कपड़ों को टटोल कर देखा कि पसीने से तर तो नहीं हुए। जब देखा कि वह सर्वथा सूखे हैं, तो मुझे निश्चय हो गया कि अब सर्वथा नीरोग होने में कुछ समय तो लग सकता है, पर सन्देह नहीं।

इस एक रात का विवरण मैंने जरा विस्तार से दिया है, ताकि मैं पाठकों के सामने स्पष्टरूप से उस रेखा को खेंच सकूं, जहां से मैंने चिकित्सा के चक्रव्यूह से बाहर निकलना आरम्भ किया।

अगले दिन डाक्टर को फिर बुलाया गया। मैं और मेरा परिवार तो प्रसन्न थे ही, डाक्टर भी बहुत प्रसन्न थे कि उनका पहला ही प्रयोग इतना सफल हुआ। भविष्य में इलाज के सम्बन्ध में डाक्टर ने एक बहुत लम्बा-चौड़ा व्याख्यान देकर मुझे समझाया कि मैं आप के रोग का इलाज नहीं करूंगा, प्रत्युत आपका इलाज करूंगा। मैं आप को इस योग्य बना दूंगा कि आप बीमारी को परास्त कर सकें। इस कार्य

में समय लगेगा। मैं आप को यह आशा नहीं दिलाता कि एक-दो सप्ताह या महीनों में आपका ज्वर बिल्कुल जाता रहेगा। आप को जो शिकायतें हैं, वह एक के बाद दूसरी दूर होती जायेंगी। सम्भव है, बुखार कुछ समय तक जारी रहे, क्योंकि वह स्वयं कोई रोग न होकर शरीर में विद्यमान व्याधि का चिन्ह है। आप उसकी कोई चिन्ता न करें।

डाक्टर के उस लम्बे व्याख्यान का सारांश मैंने इसलिये दे दिया है कि मुझे वह विचार बहुत पसन्द आया। रोग के प्रत्येक चिन्ह के लिए दो-दो तीन-तीन दवा और सुइयां लेने के बाद यह सुन कर हृदय ने बहुत सुख अनुभव किया कि एक समय में एक ही दवा दी जायेगी और वह भी प्रति दिन नहीं। यह भावना भी कुछ कम सुखप्रद नहीं थी कि आठ महीनों से चला आता बुखार कोई बीमारी ही नहीं थी। चाहे वह केवल भावना ही थी, परन्तु उस समय उसने सैकड़ों औषधियों से अधिक काम किया।

[३]

यहां पथ्य के सम्बंध में कुछ लिख देना अत्यन्त आवश्यक है। इससे पूर्व मैं लिख आया हूँ कि धीरे-धीरे मेरा भोजन मात्रा और गुणों की दृष्टि से बहुत ही क्षीण हो गया था। दूध, घी आदि पोषक पदार्थ छूट गये थे, अन्न भी नाममात्र को ही रह गया था। केवल चावल और दही और कुछ फल रस—यही मेरा पथ्य था। पुरानी खांसी के रोगी के लिए यह भोजन बहुत ही अपर्याप्त था। होमियोपैथिक डाक्टर ने पथ्य के सम्बंध में भी एक से अधिक बार विस्तृत व्याख्यान दिये। पाठक यह न समझें कि यह व्याख्यान किसी सभा में दिये गये। ये व्याख्यान मेरी चारपाई के पास कुर्सी पर शान्तिपूर्वक बैठ कर दिये गये। यह भी डाक्टर के इलाज का एक आवश्यक हिस्सा था। पथ्य सम्बन्धी व्याख्या-

नों का सारांश निम्नलिखित है—

मनुष्य को ऐसा भोजन करना चाहिए जो रुचिकारक, पोषक और अनुकूल हो। ऐसा भोजन करने से कोई लाभ नहीं हो सकता, जिस की ओर मनुष्य का झुकाव न हो या जो केवल पेट को भर दे और शरीर को शक्ति प्रदान न करे। अथवा जिसके सम्बन्ध में अनुभव ने सिद्ध कर दिया हो कि शरीर उसे स्वीकार नहीं करता। रोगी पर भी यही नियम लागू होता है। उसका भोजन भी ऐसा होना चाहिये, जिससे मन प्रसन्न हो। इस नियम को क्रियात्मक रूप देने के लिये डाक्टरजी ने मेरी पत्नी को सलाह दी कि वह सुबह-शाम दोनो समय मुझसे पूछा करें कि मैं क्या खाना चाहता हूँ। खाना ऐसी जगह बनाया जाय, जो मेरी आखों के सामने हो, यदि उस समय मैं चूल्हे के पास बैठ सकूं तो बहुत ही अच्छा है। इससे भूख चमकेगी और खाना आसानी से पच जायगा।

भोजन कैसा हो, इसके बारे में डाक्टर ने कहा कि उसका पोषक होना आवश्यक है। भोजन के सभी आवश्यक अंग उचित मात्रा में सम्मिलित होने चाहिएं। अन्न, मक्खन या घी, सब्जी, फल, दाल, चीनी आदि सभी भोज्य पदार्थ ठीक मात्रा में मिलने चाहिये तभी मनुष्य का भोजन पूरा होता है। मात्रा परिमित रखें और यह देखते रहें कि कौनसी चीज़ कितनी मात्रा तक अनुकूल पड़ती है। सब चीज़ थोड़ी मात्रा से आरम्भ करें और शक्ति अनुसार बढ़ायें।

सबसे बड़ी समस्या दूध की थी। शाकभोजियों के लिये दूध के समान पोषक दूसरा पदार्थ नहीं है। उसके लेने का डाक्टर ने यह रास्ता निकाला कि प्रातःकाल के समय दूध और हल्की चाय बराबर-बराबर मात्रा में मिला कर चोकरवाली डबलरोटी (ब्राउन ब्रेड) के एक या दो टुकड़ों के साथ लिया करो। वह विकार नहीं करेगा। डाक्टर का यह परीक्षण पूर्णरूप से सफल हुआ। उनकी बताई विधि से दूध लेते हुए

मुझे लगभग दो वर्ष हो गये हैं। कभी कोई प्रतिकूलता अनुभव नहीं हुई।

नाममात्र की दवा और उपर्युक्त पथ्य-सम्बन्धी नियमों के अनुसार मेरा होमियोपैथिक इलाज आरम्भ हुआ। एक एक करके क्रमशः मेरी शिकायतें दूर होने लगीं। उन्निद्रता और पसीने की बात मैं सुना ही चुका हूँ। उसके पश्चात् कब्ज, जुकाम, बेचैनी आदि के लक्षण धीरे-धीरे निर्बल होकर नष्ट होते गये।

जैसे कि डाक्टर ने प्रारम्भ में ही कह दिया था, ज्वर चलता रहा। अब वह अधिक तेज नहीं होता था। प्रातःकाल के समय ९७. तक उतर जाता था, और दोपहर ९९-५. तक चढ़ जाता था। कई महीनों तक ज्वर के चढ़ने उतरने का यही क्रम जारी रहा। उक्त डाक्टर का इलाज आरम्भ होने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में मेरे बोझ का घटना बन्द हो गया था और फिर महीने में तीन-चार पौण्ड की औसत से बढ़ना भी आरम्भ हो गया। ज्वर के चढ़ने उतरने का कार्यक्रम तब भी जारी रहा। बुखार का चार्ट नियमपूर्वक रखा जाता था, जिसे हर तीसरे चौथे रोज डाक्टर के पास निरीक्षण के लिये भेजा जाता था।

ज्वर के इस अटूट क्रम के टूटने का इतिहास बहुत मजेदार है। सम्भव है, वह धीमे और रोज उतरने-चढ़ने वाले ज्वर के रोगियों के लिये कुछ लाभदायक हो। इस कारण उसे मैं विस्तार से लिखता हूँ।

तबीयत के कुछ सम्हलने पर मैं चिकित्सक की सम्मति से गुरुकुल कांगड़ी चला गया। बीमारी के दिनों में मैं प्रायः सोचा करता था कि क्यों न मैं गुरुकुल चला जाऊं, शायद वहां जाने से ही मैं स्वस्थ हो जाऊं। फिर विचार आता था कि रोगी होकर गुरुकुल में जा पड़ना ठीक नहीं है। विशेषरूप से इसलिये कि मैं गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता भी था, रोगी दशा में गुरुकुल जाने से मुझे संकोच होता रहा। यों गुरुकुल मुझे ऐसे याद आता था जैसे परदेश में बीमार हो जाने पर

वतन याद आता है। जब मैं रोग की दलदल से बहुत कुछ निकल चुका, और डाक्टर ने मुझे जलवायु परिवर्तन की सलाह दी, तो मैंने गुरुकुल के आचार्य और उनके अन्य सहयोगियों का आग्रहपूर्ण निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और गुरुकुल चला गया।

वहां पहुंच कर मैंने अपनी बीमारी और इलाज की कथा गुरुकुल के डाक्टरों को सुनाई। आयुर्वेद महाविद्यालय के एक योग्य डाक्टर प्रोफेसर ने मेरी बुखार की कथा सुनकर अपनी नोटबुक में बहुत से नोट लेने के पश्चात् मुझ से कहा कि मैं इस सम्बन्ध में कल सम्मति दूंगा।

अगले दिन प्रोफेसर साहिब कई बहुत मोटी-मोटी डाक्टरी किताबें लेकर मेरे पास आये, और मनुष्य के नार्मल टैम्परेचर के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था, वह सुनाया। उससे मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्य का नार्मल टैम्परेचर ९७° और ९९-५° के बीच में घूमता है। प्रातःकाल कम होता है और दोपहर बाद अधिक। डाक्टरजी ने मुझे प्रमाणों की सहायता से विश्वास दिला दिया कि कई महीनों से मेरा टैम्परेचर नार्मल ही रहता है। यह विश्वास होजाने पर मुझे डाक्टरजी के दूसरे परामर्श के मानने में कोई दिक्कत न हुई कि थर्मामीटर लगा कर मेरा टैम्परेचर न देखा जाये। अब तक मेरे मन पर थर्मामीटर लगाने का अद्भुत असर होता था। सुबह के समय ९७° तापमान देखकर मैं समझ लेता था कि मैं बहुत कमजोर हूँ। दोपहर बाद कुछ गर्मी बढ़ने पर थर्मामीटर लगाया जाता था। उसका मेरे मन पर यह असर होता था कि अब बुखार बढ़ने लगा, और मैं चारपाई पर लेट जाता था। रात तक यही भावना बनी रहती थी कि मैं बीमार हूँ। उस दिन डाक्टर के परामर्श से मैंने थर्मामीटर उठाकर बक्स में बन्द कर दिया और सामान्य रूप से आज तक नहीं लगाया। इस बात को दो साल से अधिक व्यतीत हो गये। मैंने इस बीच में कभी यह अनुभव नहीं किया कि मैं

किसी लम्बे रोग का रोगी हूं। मेरा मानसिक ज्वर मानों थर्मामीटर के साथ बक्स में बन्द हो गया।

उस दिन से आज तक मेरा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम यह है कि मैं पथ्य और नियमित जीवन को ही मुख्य औषधि मानता हूँ। जब कभी कोई आकस्मिक कष्ट—जैसे जुकाम, खांसी, अजीर्ण आदि आ जाते हैं तो उन्हीं होम्योपैथिक डाक्टर से दवाई ले लेता हूँ। उनका कहना है कि उत्तम भोजन ही सब से बड़ा टानिक और रसायन है। मैंने इस सिद्धान्त को अनुभव से स्वीकार कर लिया है और लाभदायक पाया है। आचार्य का यह वचन—

'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात्, कालभोजी जितेन्द्रियः।' सर्वथा सत्य है।

निवेदन

जब से मेरी यह चिकित्सा सम्बन्धी लेखमाला प्रकाशित होने लगी है, तब मुझ से अनेक सज्जनों और महिलाओं ने पत्र द्वारा तथा मौखिक रूप से इलाज के बारे में तरह तरह के प्रश्न पूछे हैं और परामर्श मांगा है। मशहूर है कि पुराना मरीज आधा चिकित्सक बन जाता है और यह भी प्रसिद्ध है कि 'नीम हकीम खतरए जान।' इस कारण मैं यहां सब जिज्ञासुओं से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मुझे अपनी सेहत का सलाहकार न बनायें। मेरी इस आपबीती से या वह कुछ निर्देश लेना चाहते हैं तो वह निम्नलिखित हैं:—

१. घर में किसी के रोगी होने पर एक दम घबरा कर डाक्टरों के पास जाना और उन पर यह जोर देना कि रोगी को जल्दी से जल्दी अच्छा कर दीजिये, कभी २ बहुत खतरनाक हो जाता है। डाक्टर भी

घबरा जाता है, और आवश्यकता से अधिक दवा दे देता है। यह सर्वसम्मत बात है कि आवश्यकता से अधिक दवा, विशेषरूप से ऐलोपैथिक दवा, शरीर के लिए विष सिद्ध होती है।

२. रोगी के लिये औषध से अधिक आवश्यक और लाभदायक वस्तु ठीक पथ्य और परहेज है।

३. दीर्घकाल के रोगी का सब से बड़ा शत्रु वहम और निराशावाद है। वहम और निराशावाद रोगी की जीवनशक्ति को चूस लेते हैं। वह कायर और कमजोर हो जाता है। मैं बतला चुका हूँ कि मैं खांसी और कौलिक पेन (गोले का दर्द) का पुराना रोगी हूँ। मुझे आज तक रोगों के इस जंजाल में से सफलतापूर्वक निकालने का श्रेय मुख्य रूप से मेरे आशावाद को है।

४. इन सब उपायों के साथ २ और शायद कई अंशों में इनसे भी बढ़कर जो चीज रोगी के लिए उपयोगी है, वह रोगी की परिचर्या है। परिचर्या या नर्स का काम स्त्री जितनी सफलता से कर सकती है, पुरुष नहीं। वह रोगी भाग्यशाली है जिसकी माता, पत्नी बहन या लड़की समझदारी से चिकित्सक के कहे अनुसार परिचर्या कर सके। मैं निश्चय से कह सकता हूँ कि गत वर्षों की लम्बी बीमारी में मेरी पत्नी ने तत्परता से बुद्धिपूर्वक जो परिचर्या की, मेरे रोग मुक्त होने में उसका सब से बड़ा भाग है।

५. मैं चिकित्सा-शास्त्र का विद्वान् नहीं हूँ, इस कारण चिकित्सा-पद्धतियों पर कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकता। केवल अपने अनुभव के आधार पर इतना कह सकता हूँ कि गहरे और विषम रोगों की चिकित्सा के लिये ऐसा होम्योपैथी का डाक्टर बहुत उपयोगी सिद्ध होता है, जो शरीर विज्ञान से परिचित हो। जो लोग केवल होम्योपैथी

पथदर्शक की किताब और दवाइयों का बक्स खरीद कर डाक्टर बन जाते हैं वह तो नीम हकीमों से भी गये गुजरे हैं। शरीर की चिकित्सा करने के लिये शरीर का जानना आवश्यक है। यह मेरे सौभाग्य की बात थी कि मेरे चिकित्सक भारत और विलायत में प्राप्त की हुई शिक्षा के कारण शरीर-शास्त्र के ज्ञाता होने के साथ २ होमियोपैथी के चतुर चिकित्सक हैं। मेरी कामना है कि आवश्यकता होने पर सब रोगियों को ऐसे डाक्टर मिल जाया करें।

समाप्त